ISSN 0523 – 1418
वर्ष: 40 अंक: 6

भारतीय भाषाओं एवं साहित्य की पत्रिका

जुलाई-अगस्त 2001

भाषा

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
भारत सरकार
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
माध्यमिक शिक्षा और उच्चतर शिक्षा विभाग

भाषा

जुलाई-अगस्त, 2001

अध्यक्ष, परामर्श एवं संपादन मंडल
डॉ. पुष्प लता तनेजा

संपादक
डॉ. शशि भारद्वाज

परामर्श मंडल
श्री जगदंबी प्रसाद यादव
डॉ. गंगा प्रसाद विमल
श्री जगदीश चतुर्वेदी
डॉ. एन. सुंदरम्
डॉ. अमर सिंह वधान

सह-संपादक
छेदीलाल, जगदेव सिंह
डॉ. अनिता डगोरे, अमर जीत सिंह

आवरण-सज्जा
अनिल कुमार आर्य

कार्यालयीन व्यवस्था
अशोक वर्मा

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, माध्यमिक शिक्षा एवं उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

2523 HRD/2001—1

भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : चालीस ☐ अंक : छह
जुलाई-अगस्त, 2001

ISSN 0523-1418

संपादकीय कार्यालय
केंद्रीय हिंदी निदेशालय
माध्यमिक शिक्षा एवं उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड-VII, रामकृष्णपुरम
नई दिल्ली-110066

प्रकाशक एवं बिक्री कार्यालय
नियंत्रक
प्रकाशन विभाग
सिविल लाइन्स
दिल्ली-110054

मूल्य
एक प्रति : 6 रुपए अथवा 0.7 पौंड या 2 डालर 16 सेंट्स
वार्षिक : 30 रुपए अथवा 3.51 पौंड या 11 डालर 40 सेंट्स

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं इनसे भारत सरकार या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

भाषा

जुलाई-अगस्त, 2001
वर्ष : 40 ❑ अंक : 6

अनुक्रम

संपादकीय / 5
द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र / 6
सम्मतियां / 7

लेख

स्वातंत्र्य पूर्व हिंदी और छायावादी कवि पंत / **डॉ. प्रेम भटनागर** / 9
पंत की सौंदर्य चेतना / **डॉ. श्रीभगवान सिंह** / 20
पंत की सुकुमार भाषा / **डॉ. हर्षनंदिनी भाटिया,** / 27
पंत काव्य में मानवतावादी दृष्टि / **डॉ. रवींद्रनाथ मिश्र** / 40
पल-पल परिवर्तित पंत-पथ / **रमेश कुंतल मेघ** / 48
सुमित्रानंदन पंत / **श्री जगदंबी प्रसाद यादव** / 55
पंत की प्रगतिवादी दृष्टि / **अंबिली टी.** / 60
प्रकृति चित्रण में पंत और भारतीदासन / **के. रामनाथन** / 68
चंद्रधर शर्मा गुलेरी की साहित्यक प्रतिभा / **डॉ. विद्याधर शर्मा गुलेरी** / 76
भारत की भाषाई एकता-विविध आयाम / **डॉ. परमानंद पांचाल** / 86
भाषा चिंतन का एक और प्रतिदर्श / **डॉ. योगेंद्र प्रताप सिंह** / 91
दक्खिनी हिंदी: भाषाई विकास का गुमनाम चरण / **निरंजन सहाय** / 96
पंजाबी भाषी हिंदी लेखकों का हिंदी को योगदान / **रश्मि मल्होत्रा** / 100
माधव कंदली रामायण और रामचरित मानस / **नवारुण वर्मा** / 105
डॉ. वीरेंद्र सक्सेना की उपन्यासत्रयी का यथार्थ / **गोपाल शर्मा** / 119

दक्खिनी हिंदी : भाषाई विकास का गुमनाम चरण

निरंजन सहाय

'दक्खिनी हिंदी' भाषाई विकास की वह महत्वपूर्ण अवस्था है जो तमाम आपत्तियों के बावजूद अपने समकालीन अन्य साहित्यिक भाषाओं की अपेक्षा वर्तमान हिंदी के बीजतत्व का प्रस्थान बिंदु ज्यादा है। भाषाविदों द्वारा स्थापित मतानुसार इसका काल लगभग 14वीं से 18वीं सदी तक है।

'दक्खिनी हिंदी' का साहित्य भारत के दक्खिन कहे जाने वाले प्रदेश में प्राप्त हुआ है। इतिहासकारों के अनुसार दक्षिण भारत के नर्मदा से लेकर तुंगभद्रा तक के क्षेत्र को प्राचीनकाल में दक्षिणापथ से संबोधित किया जाता था। कालांतर में इसी दक्षिणापथ ने दक्खिन-संज्ञा का रूप धारण किया। प्रसिद्ध विद्वान डॉ. श्रीराम शर्मा ने अपनी पुस्तक 'दक्खिनी हिंदी का उद्भव और विकास' में स्पष्टतः लिखा है, 'मुसलमानों के आगमन के पश्चात् दक्खिन शब्द उस भू-भाग के लिए प्रयुक्त होने लगा जो किसी समय 'दक्षिणापथ' कहलाता था।' वर्तमान संदर्भ में यह क्षेत्र कर्नाटक, आंध्रप्रदेश एवं महाराष्ट्र का कुछ क्षेत्र है। इस प्रकार दक्खिनी हिंदी के साहित्य सृजन का क्षेत्र उत्तरी भारत से सुदूर दक्षिण के क्षेत्र में है।

यह स्वाभाविक रूप से प्रश्न उठता है कि वे कौन से तत्व थे जिनके कारण यह बोली उत्तर से दक्षिण पहुँची। मूलतः ऊपर से अलग-अलग दिखने वाला उत्तर और दक्षिण का विभाजन तत्वतः कभी भी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक दृष्टिकोण से लंबे अंतराल तक नहीं रहा। वस्तुतः भारतीय इतिहास के आरंभिक काल से ही उत्तर की बोलियों की दक्षिण में प्रसार की क्रिया चलती आ रही है। श्रीराम शर्मा ने इस ऐतिहासिक घटना का क्रमबद्ध विश्लेषण करते हुए मौर्य सम्राटों से लेकर यादवों तक के काल का विवेचन करके यह दिखलाया है कि भौगोलिक विविधता एवं दूरी के बावजूद दक्खिन एवं उत्तर का पूर्णतः संबंध विच्छेद कभी नहीं हुआ।

आंध्र सातवाहन शासकों (जैसे-गौतमीपुत्र शातकर्णी), चालुक्यों (ध्यातव्य है पुलकेशिन द्वितीय ने हर्षवर्द्धन को पराजित किया था), राष्ट्रकूट शासकों द्वारा समय-समय पर परस्पर राजनैतिक संबंध या संघर्ष उत्तर भारत से चलते रहे। यह संबंध भाषाई योगदान की दृष्टि से 14वीं सदी में तुगलक के आक्रमण के समय और मजबूत हुआ। दक्षिणी भारत पर आधिपत्य स्थापित करने के बाद 1326 ई. में मुहम्मद बिन तुगलक ने दिल्ली से अपनी राजधानी देवगिरि (दौलताबाद) बनाने का निश्चय किया। वहाँ जाकर कुछ दिन बाद वह दिल्ली वापस चला आया। उसके दिल्ली से जाकर देवगिरि से पुनः दिल्ली आने के क्रम में सत्ता के 'ख़ास' के साथ 'आम जनता' भी थी जिनमें से बहुत खासोआम जनता देवगिरि रह गई, उनकी भाषा भी रह गई, और धीरे-धीरे तत्कालीन भाषा के साथ सामंजस्य स्थापित कर अपनी सत्ता स्थापित करने लगी। इन्हीं सब कारणों से कालांतर में दक्षिणी क्षेत्र में धीरे-धीरे ऐसी मिश्रित भाषा का जन्म हुआ जिसका मूलाधार खड़ी बोली या बांगरू के होते हुए भी ब्रजभाषा, पंजाबी, राजस्थानी, अवधी आदि के प्रभावों से युक्त था।

दक्खिनी के उद्भव और विकास में सूफी संतों की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण रही। दक्खिनी साहित्य में अधिकांशतः सूफी-मतवादों की ही चर्चा है।

इसी संदर्भ में दक्खिनी क्षेत्र में बोली और साहित्य रची जाने वाली भाषा के नामकरण पर विचार करना तर्कसंगत लगता है। दक्खिन के अहिंदी भाषी जन ने इसे 'तुर्को की बाशा (बात)' की संज्ञा दी। मराठी इसे 'हिंदुस्तानी' की संज्ञा देते हैं। तत्कालीन लेखकों का एक वर्ग इसे 'गुर्जरी' भी कहता था। परंतु अधिकांश दक्खिनी लेखकों ने अपनी इस भाषा के लिए 'हिंदी' नाम का प्रयोग किया जिसे कहीं-कहीं 'हिंदवी' भी कहा गया। शाह मिरांजी ने लिखा है–

हैं अरबी बोल तेरे। और फारसी भौतेरे।
ये हिंदी बोलूं सब। उस अतो के सबब।।

वजदी ने भी 'सबरस' में अपनी भाषा को हिंदी ज़बान की संज्ञा दी है। कालांतर में वजदी ने कुतुबमुश्तरी नामक पुस्तक में इसके लिए 'दक्खिनी' का प्रयोग किया। समासतः यह कहा जा सकता है कि दक्खिनी के लेखक इस भाषा के लिए मुख्यतः 'हिंदी' का ही प्रयोग करते हैं।

वर्तमान में इसे कौन सा संबोधन दिया जाए इस पर विद्वानों में मतभेद है। नामवर सिंह अपनी पुस्तक 'हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योगदान' में इसके लिए 'परवर्ती अपभ्रंश' या 'अवहट्ट' प्रयोग को उचित ठहराते हैं। श्रीराम शर्मा इसे 'दक्खिनी हिंदी' कहना उचित समझते हैं। यह सहमति उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'दक्खिनी हिंदी का उद्भव और विकास' के नाम से ही स्पष्ट हो जाती है। आज की हिंदी की बहुतायत विशेषताओं को अपने अंदर अन्य समकालीन भाषाओं, जैसे-परवर्ती अपभ्रंश की अपेक्षा ज्यादा समेटे रहने के

कारण, फ़िलहाल 'दक्खिनी हिंदी' नामकरण ज्यादा तर्कसंगत प्रतीत होता है। इस भाषा में रचित कुछ प्रमुख कृतियां, कृतिकार सहित इस प्रकार हैं–

मेराजुल आशक़ीन, शिकारनामा (ख़ाजा बंदेनवाज गेसूदराज), खुशनामा, शहादतुल हक़ीकत (शाह मिरांजी शम्शुल इश्शाक), वसीयतुल हादी, इर्शादनामा (शाह बुरहाननुद्दीन जानम), सबरस (वजही), बागेजां फ़िज़ा (वजदी)।

इसके साहित्यिक रूप की चर्चा के लिए, इसकी भाषा शैली तथा लिपि एवं इसके व्याकरणिक ढांचे का परीक्षण एवं इन सब पर समग्रतः पूरबी, पछांह तथा दक्षिणी बोलियों के प्रभाव को देखना जरूरी है। इन संदर्भों को एक उद्धरण के द्वारा बहुत ही स्पष्ट ढंग से समझा जा सकता है। यह उद्धरण ख्वाज़ा बंदेनवाज गैसूदराज रचित है, जो 'मेराजुल आशक़ीन' से लिया गया है–

"वजुदूल आरफीन है नांव उसका वो ही पावे नसीब है खूब जिसका ज कोई पीर कामिल सू तो देखे अली उसको मना नई है भी किसका, ऐ आरिफ हरेक इन्सान कूं वजूद है सो इसमें चारू वजूद बंद के हैं, एक वजूद बारीताला का है, अम्मा हरेक वजूद के शत्तों व लावजमात सो वो समजना शेर अमल करना।"

दक्खिनी के उल्लिखित स्वरूप की भाषा को बुनियादी तौर पर हिंदी माना जा सकता है। हालांकि इसमें थोड़ा अटपटापन भी दिखता है लेकिन इस संबंध में यह नहीं भूलना चाहिए कि यह चौंदहवीं-पंद्रहवीं सदी की हिंदी है। भाषा का मूल ढांचा खड़ी बोली का है एवं इसके कई शब्दों पर विभिन्न जनपदीय बोलियों, जैसे–ब्रज, अवधी, पंजाबी एवं राजस्थानी का भी प्रभाव है।

यद्यपि 'दक्खिनी' की भाषा 'हिंदी' थी किंतु इसकी लिपि मुख्यतः अरबी थी तथा इसकी कुछ रचनाएं फारसी में मिली हैं। ऐसा इस्लामी राजसत्ता एवं सूफी काव्यधारा की उपस्थिति के कारण था।

अब ध्वनि तंत्र पर विचार करें। हिंदी के समस्त स्वर एवं व्यंजनों का प्रयोग 'दक्खिनी' में मिलता है। स्वरों में उकार एवं ओकार के बीच का एक अतिरिक्त स्वर भी दक्खिनी में मिलता है जो डॉ. कादिरों के अनुसार द्रविड़ का प्रभाव है।

* दक्खिनी में महाप्राण ध्वनियों का उच्चारण अल्पप्राण रूप में होता है। जैसे–देख का उच्चारण देक, लाख का लाक आदि।
* दक्खिनी में दो मूर्धन्य ध्वनियों का प्रयोग एक साथ नहीं होता। जैसे–ठंढी का रूप थंडी या टूटे का रूप तुटे जैसा।
* दक्खिनी में बहुवचन के लिए 'आं' का प्रयोग मिलता है जो कि हरियाणवी प्रभाव का प्रतीक है। जैसे–बातां ने बंदा।
* दक्खिनी में शब्दों या संज्ञाओं के दुहराव के समय संज्ञा में ए या एंजुट जाता है। जैसे–घर-घर के स्थान पर घरे-घरे।

* इसमें सर्वनामों के जो रूप प्राप्त हुए हैं वो आज की हिंदी में भी प्रयुक्त होते हैं। जैसे–मैं, हम, तू, वो आदि पुरुषवाचक सर्वनाम, आप, आपने, आपे आदि निजवाचक सर्वनाम, कोण (कौन), किस, जिस आदि प्रश्नवाचक सर्वनामों के कई रूपों का प्रयोग दक्खिनी में मिलता है।
* परसर्गों या कारक के चिह्नों का भी दक्खिनी में प्रयोग हुआ है जो कई मायनों में आधुनिक कारक चिह्नों से समानता रखता है। हिंदी की सबसे बड़ी पहचान कर्त्ता के 'ने' चिह्न का प्रयोग दक्खिनी में मिलता है। जैसे–'दोस्तां ने बोले है।'
* करण एवं अपादान परसर्गों में हिंदी की तरह दक्खिनी में भी 'से' का रूप मिलता है। 'से' के स्थान पर 'सों' रूप का प्रचलन अधिक था।
* संबंध कारक के लिए 'दक्खिनी' में का, के, की आदि रूप प्रयुक्त होते थे जो आज की हिंदी में भी है। 'दक्खिनी' में इस कारक के लिए केरा, केरे, केरी आदि रूप भी मिलते हैं।
* दक्खिनी क्रिया के विभिन्न रूप भी हिंदी में समानता लिए हुए हैं। दक्खिनी में धातु में 'ना' जोड़कर क्रिया का सामान्य रूप बनाया जाता था। जैसे–सूंघना।
* भविष्यतकालीन क्रिया के रूप में 'गा', 'गे', 'गी' अंत वाले मिलते हैं। जैसे–दिखलाइएगा, सकेगा आदि। हिंदी में भी इन्हीं रूपों का प्रयोग होता है।

उल्लिखित विवरणों से यह स्पष्टतः पता चलता है कि आज की हिंदी के बीजतत्व 'दक्खिनी हिंदी' में सर्वाधिक थे। दक्खिनी में गद्य एवं पद्य दोनों धाराएं प्रवाहित हो रहीं थीं और यह ध्यातव्य है कि तत्कालीन समय में गद्य का प्रारंभ उत्तरी भारत में नहीं हुआ था।

हिंदी के उद्भव की प्रचलित परिकल्पना के अनुसार हिंदी भाषा का उद्भव अपभ्रंश से हुआ जो कि स्वयं वैदिकी → संस्कृत → पालि → प्राकृत के बाद की अवस्था है। वैसे इस परिकल्पना पर कुछ विद्वानों, जैसे–डॉ. रामविलास शर्मा ने गहनतापूर्वक शोध करके इस पर अनेक आक्षेप लगाए हैं। किंतु उन्हें छोड़ भी दें तो दक्खिनी का उद्भव एवं स्वरूप इस परिकल्पना पर एक महत्त्वपूर्ण प्रश्नचिह्न लगाता है। परवर्ती अपभ्रंश एवं दक्खिनी समकालीन तो थी ही। ऐसे में जब अपभ्रंश समर्थक विद्वान हिंदी के जिन रूपों को अपभ्रंश का घिसा रूप साबित करते हैं तब वे हमें दक्खिनी में हिंदी के लगभग मिलते-जुलते रूपों में प्राप्त होते हैं। 'दक्खिनी' की उपस्थिति सिद्ध करती है कि वह भाषा मौजूद थी एवं अपभ्रंशकाल में भी थी। वस्तुतः अपभ्रंश से हिंदी का उद्भव नहीं हुआ एवं कम-से-कम हिंदी भाषा के संदर्भ में ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान के प्रचलित ढर्रे एवं आर्यभाषा परिकल्पना पर पुनर्विचार की आवश्यकता है।